

लोक गाथा की कथा संरचना

सारांश

लोक गाथा बहुत सारी व्याख्येय पदावलियों में से एक है। इस पद की अनेकों व्याख्यायें विद्वतजनों ने समय समय पर प्रस्तुत की हैं, लेकिन उनमें से हमेशा कुछ न कुछ अव्याख्येय सा छूट जाता है। समकालीन विचार सारणियों ने इस छूटे हुए की पहचान करने के तमाम उपकरण मुहैया कराये हैं। इस आलेख में लोकगाथा की रीढ़ उसकी कथा को मानते हुये व अन्य को आनुसंगिक मानते हुए विभिन्न विचार सारणियों के परिप्रेक्ष्य को सामने रखते हुये लोकगाथा के काव्यानुशासनिक पड़ताल करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : लोक गाथा, कथा संरचना, समकालीन, आनुसंगिक, परिप्रेक्ष्य, काव्यानुशासन।

प्रस्तावना

बीसवीं सदी के चिन्तन को तीन विचारधाराओं ने सबसे अधिक प्रभावित किया। अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र में 'कार्लमार्क्स' ने ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद के जरिये आधार संरचना और अधिसंरचना के द्वन्द्व से परिवर्तन के सिद्धान्त के रूप में आर्थिक चिन्तन को प्रभावित किया। 'फ्राइड' ने मानसिक संरचना के अन्तर्गत और मन के सिद्धान्त के रूप में मानसिक विकास के सिद्धान्त को दिया और भाषा के क्षेत्र में 'सस्यूर' ने भाषा के वाक् और पैरोल के रूप में द्विस्तरीय संरचना की बात कही। इन तीनों सिद्धान्तों ने समाज व्यवस्था से लेकर कला चिन्तन तक प्रभावित किया। लेकिन संरचनावाद का सिद्धान्त इन सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या पर आधारित था। पिछले तीनों सिद्धान्तों में कुछ सवाल ऐसे थे जो अनुत्तरित रह जाते थे या उनके माकूल जवाब नहीं मिलते थे। संरचना के सिद्धान्त ने इसके जवाब ढूँढने के प्रयास किये—

संरचनावाद की परिभाषा ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इस तरह की गई है— "यह मानव संवेदन, व्यवहार, संस्कृति और अनुभव को समझने और व्याख्यायित करने की पद्धति है, जो कि किसी अवधारणात्मक व्यवस्था के विभिन्न तत्वों के सम्बन्ध रचना पर केन्द्रित हैं।" संरचना का सिद्धान्त प्रकार्यवादी अर्थों से अधिक महत्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त का विकास भाषा वैज्ञानिक सन्दर्भ में फर्नानडो सस्यूर ने किया। बाद में 'क्लाड लेवी स्ट्रास' ने मानव विज्ञान में इसका प्रयोग किया तथा संस्कृति और दर्शन, साहित्य आदि के संदर्भ में रोलन बार्थ, लुईस अन्थ्यूजर, जैन्स लैकन ने किया।¹

"संरचनावादी चिन्तन ने सिद्ध किया है कि वह चीज, जिसे 'कॉमन सेंस' अथवा 'सहज बुद्धि' कहा जाता है, स्वयं एक विचारधारात्मक निर्मित है, जो ऐतिहासिक परिस्थितियों पर आधारित है और सामाजिक नियामकों की सहभागिता में कार्यान्वित होती है।"² सहज बुद्धि की यह अवधारणा 'कॉलरिन' की सहजानुभूति से अलग है। इसका सीधा अर्थ था सामान्य चिन्ता, गम्भीर सवाल या वृहद सवाल से अलग इन्होंने साधारण सवालों को अपना आधार बनाया। संरचनावाद ने उन सवालों को उठाने की कोशिश की, जो निहायत सामान्य और सहज थे तथा जिनका जीवन की आम स्थितियों के साथ सीधा सम्बन्ध था। यही वह समय था कि बीसवीं सदी के मजे हुये दर्शनों के बीच भी यह अपनी जगह बनाने में सफल हुआ।

"संरचनावाद ने सबसे अधिक प्रश्न इसी पर आधारित किये हैं। संरचनावादी एवं उत्तर-संरचनावादी विचारकों ने अपने-अपने स्तर पर इस पूर्वकल्पना को मिथ्या सिद्ध किया है कि 'व्यक्तिपरकता' अर्थात् मानवीय मस्तिष्क अथवा व्यक्ति का स्वत्व, अर्थ एवं प्रक्रिया का उद्गम और स्रोत है।"³ व्यक्तिपरकता ने तमाम ऐसी वैचारिक स्थितियों को जन्म दिया था, जिससे समाज और अर्थव्यवस्था विस्फोटक मोड़ पर आ खड़ी हुई थी। दुनिया में परिवर्तन की गम्भीरताओं को ध्यान में रखते हुये इस बात की माँग दिखने लगी थी कि कोई दर्शन इसके जवाब में आना चाहिये। संरचनावाद ने इस कमी को पूरा किया।



कुशलपाल सिंह

प्रोजेक्ट फेलो,
हिन्दी विभाग,
आगरा कॉलेज,
आगरा

भूपाल सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
आगरा कॉलेज,
आगरा

संरचनावाद ने भाषा की संरचना में व्याप्त तीनों शक्तियों को रूप के भीतर समेटा। अभिधा लक्षण व्यजना। ये तीनों अर्थ भाषा की संरचना के सीधे सम्बद्धता में शामिल नहीं थे। गोपीचन्द्र नारंग लिखते हैं कि— “भाषा मात्र रूप है, जो वस्तुओं और व्यक्तियों की दुनिया को निर्मित करने की ओर वस्तुओं को उनके विभेदात्मक के माध्यम से पहचानने की सम्भावना रखती है। भाषा वस्तुओं को अपने रंग में रंग देती है।”⁴ भाषा को चिन्तन का आधार बनाना एक महत्वपूर्ण चिन्ता का परिणाम था। हिन्दी साहित्य के उत्तर स्वातंत्र्य वैचारिक ढाँचे में भी भाषा की समस्या महत्वपूर्ण रूप से उठती दिखती है। यही स्थिति दुनिया भर में चिन्ताओं से परे है।

“संरचनावादी चिन्तन विचारधारा और भाषा के सम्बन्ध की भी नूतन व्याख्या करता है। विचारधारा निसर्गतः अस्तित्व नहीं रखती है। यह जो कुछ भी है भाषा के ‘विमर्श’ के अन्दर ‘लिखी हुई’ है यानि विद्यमान है।”⁵ “संरचनावादी प्रयत्न जो गहनता से उतरकर छिपे तन्त्र में संरचना को देखता है। यानि तंत्र के हार्डवेयर को नहीं, तंत्र के सॉफ्टवेयर की पड़ताल ही संरचनावाद है।”⁶

“संरचनावाद यही कहता है कि यह विश्व स्वतंत्र वस्तुओं से संयोजित नहीं और भाषा वस्तुओं के नामकरण का तंत्र नहीं है, यानि भाषा नॉमेन क्लैचर नहीं है, जो शब्द-वस्तु के कथित सम्बन्ध पर आधारित हो, वरन् वस्तुओं के नाम या अर्थ ‘संरचना’ से उद्भूत होते हैं, जो दृष्टि से ओझल हैं। संरचनावाद का सर्वाधिक बल इसी बात पर है कि विश्व सम्बन्धों के तंत्र से संयोजित है। बिना सम्बन्धों के तंत्र के किसी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं।”⁷

“संरचनावाद एक ऐसी आवश्यकता की पूर्ति-हेतु अस्तित्व में आया कि समस्त मानवीय दर्शनों में संगति उत्पन्न कर सके यह एक आस्थापरक आवश्यकता भी थी।”⁸

“संरचनावाद बहरहाल अपने व्यापक अर्थ में विश्व और वस्तुओं को अलग-अलग नहीं, अपितु उनके सम्बन्धों के तंत्र के आलोक में समझना चाहता है। ‘विट्गेंस्टाइन’ का आग्रह है कि ‘विश्व वस्तुओं से नहीं ‘तथ्यों’ के समूह से निबद्ध है और ‘तथ्य’ परिस्थितियाँ हैं।”⁹

“मनुष्य स्वाभाविक रूप से भाषा की सम्भावनाओं को एक विशेष ढंग से व्यवस्थित करने और उनके कार्यान्वयन की सृजनात्मक सामर्थ्य रखता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार के ‘विश्वजनीय व्याकरण’ में सहभागी है, जिसके आलोक में उसके लिये अपनी भाषा गढ़ना, आवश्यकतानुसार नये व्याकरणिक वाक्यों का गठन करना और उन्हें संप्रेषण के लिए प्रयुक्त करना सम्भव हो जाता है।”¹⁰

“संरचनावादी भाषिकी के विशेषज्ञ जिस ‘ध्वनि-शास्त्रीय क्रांति’ का शुभ समाचार दे चुके हैं, उसकी कार्यपद्धति संकल्पनाओं से नृतत्वशास्त्र में भी लाभाचिंत हुआ जा सकता है और नई सम्भावनाओं की खोज की जा सकती है।”¹¹ संरचनावाद मूलतः यथार्थता – बोध सिद्धान्त है, अर्थात् यथार्थता या विश्व हमारी चेतना एवं बोध का हिस्सा किस प्रकार बनते हैं, हम वस्तुओं के सत्य को

उद्बुद्ध किस प्रकार करते हैं या अर्थोत्पत्ति किन आधारों पर है तथा अर्थोत्पत्ति की प्रक्रिया किस प्रकार सम्भव होती है और कैसे जारी रहती है? “जोनाथन कुलर के शब्दों में संरचनावादी की तलाश और खोज इस दिशा में थी कि साहित्य की ऐसी ‘लांग’ अर्थात् काव्यशास्त्र संरचित किया जाए, जिसका सम्बन्ध वैयक्तिक कलाकृतियों से वैसा ही हो, जैसा ‘लांग’ का ‘पारोल’ से होता है।”¹²

“संरचनावादी आलोचना साहित्यिक और साहित्यिक पढ़त का ऐसा काव्यशास्त्र गढ़ना चाहती थी, जो उन सिद्धान्तों और विधियों को अमूर्त रूप से सूत्रबद्ध कर सके, जिनके अनुसार साहित्य के विविध रूप कविता, कहानी, उपन्यास आदि अस्तित्व में आते हैं और सम्बन्धित संस्कृति से संपृक्त लोग उनको पढ़ और समझ सकते हैं और उनसे आनन्दित होते हैं।”¹³

“संस्कृति अथवा भाषा अथवा साहित्य के किसी व्यंजक या वर्ग की संरचना से अभिप्राय उस व्यंजक या वर्ग के तत्वों के मध्य अमूर्त सम्बन्धों का वह तंत्र है, जिसके माध्यम से अर्थ स्थापित होते हैं। सम्बन्धों के इस तंत्र की विशिष्टता यह है कि इसमें प्रत्येक क्षण स्वनियमन एवं आत्म-संगति की प्रक्रिया चलती रहती है और प्रत्येक परिवर्तन एवं रूपांतर अथवा वृद्धि के उपरान्त संरचना अपने वृहत स्वरूप को दोबारा प्राप्त कर लेती है और यह प्रत्येक निमिष में सम्पूर्ण और प्रभावकर है। संरचना इतिहास के भीतर है, लेकिन चूँकि प्रत्येक क्षण पूर्ण और प्रभावकर है, इसलिये स्वतंत्र भी है।”¹⁴

“संरचनावादी विशेषज्ञों की बड़ी संख्या ने साहित्यिक कलाकृतियों का अध्ययन इस प्रकार किया है कि उन सिद्धान्तों एवं नियमों अथवा दृष्टि से ओझल उन सम्बन्धों का पता चलाया जा सके, जो साथ मिलकर साहित्यिक परम्परा के अमूर्त तंत्र का गठन करते हैं और जिनके कारण कोई कलाकृति सार्थक बनती है।”¹⁵

“संरचनावाद के बाद आलोचक पद्धति में बदलाव आया जिसे ‘उत्तर-संरचनावादी स्थिति’ कहते हैं। उत्तर-संरचनावादी सिर्फ एक दार्शनिक पद्धति की तरह ही नहीं आया, वह एक दार्शनिक रूप की तरह भी आया।”¹⁶

उत्तर संरचनावादी विचार पद्धति यूरोप में सातवें दशक में आरम्भ हो गई थी। लेवी स्ट्रास आदि के संरचनावाद में पैदा हुई। अधिपत्यवादी प्रवृत्तियों के विकल्प में लाकां ने कुछ बातें कहीं स्ट्रास की पद्धति मनुष्य समाज को अन्ततः मशीन की तरह परिभाष्य और कथनीय बनाती है, यह खतरनाक है। बाद में लूका आदि ने इस स्थिति पर विधिवत कार्य किया।

“यद्यपि संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद दोनों भाषिकी से सम्बद्ध है और भाषा पर ही अपने-अपने तरीके से विमर्श करते हैं, पर संरचनावाद में भाषा को एक मॉडल के रूप में प्रस्तुति पर बल था। उत्तर-संरचनावाद में इस पर और अधिक बल दिया गया।”¹⁷ उत्तर-संरचनावाद संरचनावाद की कमियों को ठीक करने का प्रयास था जिसने संरचनावाद से आगे जाकर संरचनाओं को पढ़ने और समझने की कोशिश की है।

“इस तरह उत्तर-संरचनावाद ने लेखक को टेक्स्ट (पाठ) से अलग कर दिया। उत्तर संरचनावादी

विकास शुद्ध वस्तुनिष्ठ विमर्श हैं। इसमें वैयक्तिकता के लिए बहुत कम गुंजाइश है। 'देरिता' ने अपने 'ग्रन्थ ऑफ ग्रामेरोलॉजी' में विखण्डन के तीन सूत्र दिये हैं— डिफरेंस, ट्रेस और आर्क टाइटिक इनसे पहले दो साहित्य की भाषा संरचना तथा तीसरा अनकहे की तलाश से सम्बद्ध है।¹⁸ (संरचनावाद में) माना कि मानवीय गतिविधियाँ सांकेतिक अर्थ प्रणालियों में उत्पन्न होती हैं, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक शक्तियाँ विचारधाराओं के माध्यम से वैधता अर्जित करती हैं। "उत्तर संरचनावाद की बात करते हैं तब कुछ संवाद होता है साहित्य और समानवित्तियों में।"¹⁹

संरचना अपने अभिधार्य में इस बात को व्यक्त करती है कि किसी भी वस्तु या विचार का विरचन एक संरचना से ही व्यक्त होता है। वस्तु जगत में जितने विचार हैं और उनसे निर्मित स्थितियाँ या तथ्य हैं उनकी अपनी संरचना है और दोनों का ही पढ़ा जाना व समझा जाना महत्वपूर्ण है।

लोक गाथाओं के विशेषज्ञ संरचनावादी पद्धति क्रम इस विश्वास के साथ इस्तेमाल करते हैं कि किसी लोक गाथा और उसके सम्बन्धों के बीच एक निश्चित तर्क है। 'व्लादिमीर प्रोप और लेवी स्ट्रास' ने मुख्य रूप से संरचनावादी पद्धति को इस्तेमाल करते हुए लोक गाथाओं के निहितार्थ को उजागर करने के लिये काम किये हैं। मूल रूप से ये सस्पूर के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त का ही उपयोग करते हैं और लोक साहित्य को एक भाषाई संरचना के रूप में ही देखते हैं। ऐलेन ड्यून्स ने लोक आख्यानों की जैविकी (Biology) को निर्धारित करने की कोशिश की है, जिसके मूल सिद्धान्त संरचनावादी हैं। प्रोप की पुस्तक 'द माफ़ोलॉजी ऑफ फोकटेल' भाषा संरचनात्मक आधार पर फोकलोर की गहन व्याख्या प्रस्तुत करती है।

ड्यून्स का कहना है कि— "प्रोप ने संरचना के वाक्य-विन्यास पक्ष को लिया है। वहीं लेवी स्ट्रास का सम्बन्ध उदाहरणवादी संरचनावाद से रहा है।"²⁰ सांस्कृतिक दृष्टि से स्ट्रास का काम अधिक महत्वपूर्ण है। 1955 ई0 में जर्नल अमेरिकन ऑफ फोकलोर में द स्टडीज ऑफ मिथ। उसके बाद 1969, 71, 79, 81 में माइकोलॉजिक सीरीज प्रकाशित करते हुए स्ट्रास ने संस्कृति के क्षेत्र में संरचनावाद को स्थापित कर दिया। मिथकों के कोड के Diagram बनाये जिसकी मिथीक्स के साथ सम्बन्धों की रूपरेखा तैयार की। एडम लीच, मैरी डगलस आदि विद्वानों ने लेवी स्ट्रास के उस स्वप्न को साकार करने की कोशिश की। जिससे लेवी स्ट्रास किसी दूसरी संस्कृति को बिल्कुल भिन्न अर्थ में दिखाना चाहते थे।²¹ लेवी स्ट्रास पहले बड़े चिन्तक हुए जिन्होंने सस्पूर के संरचनावाद को आगे बढ़ाते हुए संरचनात्मक विज्ञान की अवधारणा विकसित की। लेवी स्ट्रास ने पारिवारिक सम्बन्धों, गोत्र सम्बन्धों को भी संरचना के भीतर पढ़ा। रोलांवारथ के संरचनावादी सिद्धान्त ने "पाठ" को एक निर्विकल्प स्थिति प्रदान की। विचारधारा और पॉजिटिज्म ने एक दौर में अपने को स्वाभाविक बना लिया था। संरचनावाद ने उसे अस्वाभाविक और अवांछित करार दिया। रचना पाठ बनी जिसे निर्मित किया जा सकता है

और जिसे पुनर्निर्मित किया जा सकता था। जरूरी होने पर तोड़ा या विखण्डित किया जा सकता था।"²²

"कथा की संरचना वस्तुतः उसका पूरा खाका, गठन शिल्प शैली अर्थात् रूप पक्ष ही है। लेकिन इसी में कथा भी समाहित है। संरचनावादी हर साहित्यिक पाठ को एक जीवित जीव के रूप में मानते हैं जिसका अपना रूपाकार और जीवन होता है। रचना में कथ्य दरअसल 'कथा' प्रश्न का जवाब होता है और कैसे प्रश्न का जवाब ही रूप पक्ष है।"²³

सुधीश पचौरी लिखते हैं— संरचना क्या है? संरचना स्थापत्य कला में विभिन्न अंगों की व्यवस्था का नाम है। जिससे हर चीज एक-दूसरे से सम्बद्ध हो जाती है जिसमें अलग-अलग तत्व एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं, जिससे एक निश्चित रूप उभरता है जो अनेक स्तरीय संरचना के लिए 'मॉडल' यानि आदर्श होता है, अन्तिम संरचना होता है। यह अन्तिम संरचना हर छोटी से छोटी रचना में होती है, अर्थ का केन्द्र होती है। वह हर चीज को माइने देती है।"²⁴ संरचनावाद उत्तर-संरचनावादी विमर्शों ने अध्ययन की अन्तरअनुशासिक पद्धतियों के आधार पर न केवल दर्शन के क्षेत्र में बल्कि साहित्य, समीक्षा, राजनीति, समाजविज्ञान, अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भी अपनी पैठ जमायी। लोकसाहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में इन पद्धतियों के आधार पर किये गये अध्ययनों ने महत्वपूर्ण तरीके से सोचने के तरीकों को बदला। लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति के क्षेत्र में नये-नये चिन्तन इन पद्धतियों के विकास के बाद शुरू हुये और इतिहास तथा ज्ञान के लिये इन कला तथ्यों से महत्वपूर्ण निष्कर्ष ढूँढ निकालने की सम्भावनाओं का विकास हुआ।

लोकगाथा की संरचना के प्रमुख विमर्श

लोक कथा को व्यक्त करने वाले कुछ प्रचलित शब्द हैं—

1. फेबुल (Fable)

जानवर और पशुओं सम्बन्धी ऐसी उपदेश कथायें, जिनमें मूलतः नैतिक शिक्षा दी जाती है। भारत में पंचतन्त्र, कथासागर, हितोपदेश ऐसी ही कथायें हैं। अंग्रेजी में 'हेनरीसन ड्राइडन' ने ऐसी ही कथायें लिखी हैं। फ्रांस का 'लॉ-फान्टेन' इस तरह का प्रसिद्ध कथाकार है।

2. फेबुलिओ

इसमें व्यंग्य और हास्य की प्रधानता रहती है। किसी सामाजिक विद्रूपदा को व्यक्त किया जाता है।

3. फेयररी

ये मुख्यतः परी कथायें होती हैं। कल्पना लोक में जाकर मनुष्य के निराशापूर्ण क्षणों में विजय भर देती है। भारत, अरब, यूरोप में ऐसी परी कथाओं की लम्बी परम्परा है। जिनमें परियों द्वारा मनुष्य को सहायता पहुँचाना, क्षति पहुँचाना, चमत्कारिक घटनाओं को अंजाम देना।

4. गोल्डन लीजेण्ड

ये मुख्यतः किसी धार्मिक अवसर पर किसी साधु पुरुष या धर्मपुरुष के जीवन चरित्र पर वीरगाथा को कहने के लिए कही जाती है। 'गोल्डन लीजेण्ड ऑफ जैकोप्स दी वोरैजिन' में ऐसी तमाम सन्तों की

जीवन-कथाओं का संकलन है। यूरोप के देशों में 'हरक्युलिस की कहानी' इसी तरह की कहानी है। 'स्युन्जरटन' ने इसी तरह की कहानियों का संकलन 'दी लीजेन्ड ऑफ पंजाब' में किया है। जाहरवीर की कथा इसी श्रेणी में आती है।

5. मिथ

यह वह कथा है जिसमें किसी प्राचीनकाल की घटना को दिखाया जाता है। जिसमें देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीरता, देवी-देवित्व एवं स्थानीय जनता की अलौकिक संरचना को दिखाया जाता है, इनकी पृष्ठभूमि धार्मिक होती है। भारतीय पुराणों में ऐसे तमाम मिथ हैं। 'डॉ० मेकडानिल' ने वैदिक मैथोलॉजी तथा डॉ० ए.वी. कीथ ने 'इण्डियन मैथोलॉजी' नामक पुस्तकों में इसी तरह की रचनाओं का विवेचन किया है।

जाहरवीर की कथा में लोकगाथा (Ballad) मिथ, परीकथा, सबका समावेश है। इसके रचनाकार के बारे में कोई ज्ञान नहीं है। यह मूलतः लोक की रचना है जो एक मुख से दूसरे मुख तक स्थानान्तरित होने के फलस्वरूप बदलती चली आयी है। हालाँकि रॉबर्ट ग्रेन्स का मानना है कि "लेखक का अज्ञात होना लेखक की अपनी कृति के प्रति लज्जाशीलता प्रकट करना है।"²⁵ लेकिन जाहरवीर की कथा को देखकर ऐसा नहीं लगता कि इसके प्रति रचनाकार के मन में कोई लज्जाशीलता होनी चाहिए। 'डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय' लिखते हैं कि "लोक गाथा का कोई मूल पाठ नहीं होता क्योंकि यह समुदाय की सम्मिलित रचना होती है। अतः इसके मूलपाठ का पता लगाना कठिन है।"²⁶ 'डॉ० हडसन'²⁷ ने समृद्धित रचना और अलंकृत रचना के रूप में दो प्रकारों की चर्चा करते हुए इसके लोक गाथा के पाठ की अनियमितता को दिखाया है।

मूलपाठ के सम्बन्ध में राहुल सांकृत्यायन और डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय कहते हैं— "लोक गाथाओं का कोई प्रमाणिक मूलपाठ नहीं होता। चूँकि लोकगाथा समुदाय की सम्मिलित रचना होती है। अतः इसके मूल पाठ का पता लगाना बड़ा कठिन कार्य है। लोक कवि गाथा की रचना कर उससे पृथक हो जाता है। अब यह गाथा समस्त समाज समुदाय या जाति की रचना हो जाती है और प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझने लगता है। प्रत्येक गवैया अपनी इच्छा के अनुसार उसमें नयी पंक्तियाँ जोड़ता जाता है। एक ही गाथा के विभिन्न प्रान्तों या राज्यों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय कवि अपनी भाषा का पुट उसमें देते जाते हैं। इस प्रकार आकार में वृद्धि होने के साथ ही साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन हो जाता है।"²⁸

क्रीट्ज कहते हैं कि— "सभी लोक गाथाओं का बराबर महत्व होता है।"²⁹ प्रायः सभी लोक गाथाओं में किसी न किसी रूप में गायन का हस्तक्षेप रहता है। कुछ कथायें पूरी तरह से गेय रूप में पायी जाती हैं। कुछ कथाओं के गेय और कथा दोनों रूपों का मिश्रित प्रयोग चलता है। जाहरवीर की कथा के बारे में ये दोनों चीजें पायी जाती हैं। कई स्थान पर केवल गेय कथा प्रचलित है जिसे 'जात' के अवसर पर प्रस्थान करते समय गाया

जाता है तो कई स्थानों पर कहानी कहते-कहते बीच-बीच में गायन का प्रयोग किया जाता है। हालाँकि लोक गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त बने हैं, जिनमें 'ग्रिन' का समुदायवाद 'श्लेगल' का 'व्यक्तिवाद', स्टेन्थल का 'जातिवाद', परसी का 'चारणवाद', चाइल्ड का 'व्यक्तिहीन व्यक्तित्ववाद', उपाध्याय का 'समन्वयवाद' आदि उल्लेखनीय हैं। इन सिद्धान्तों के विकास के अपने तर्क हैं लेकिन हमारा विषय एक लोक गाथा की सांस्कृतिक संरचना का अध्ययन करना है। अतः इन सिद्धान्तों पर विस्तृत चर्चा यहाँ जरूरी नहीं।

लोकगाथा में संरचना के विमर्श पर सबसे महत्वपूर्ण और आरम्भिक कार्य ब्लादिमीर प्रोप ने किया। 1928 में उनकी पुस्तक मार्फोलॉजी ऑफ द फाकटेल आयी। उसने कहा कि लोक आख्यानों में सात चरित्रों और 31 प्रकार्यों को बांटा जा सकता है। ये चरित्र लोकप्रिय परम्पराओं में आसानी से ढूँढे जा सकते हैं। प्रोप के सिद्धान्त ने बाद के चिन्तनों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया, जिनमें लेवी स्ट्रास और रोला वार्थ प्रमुख हैं। प्रोप ने लोक आख्यान में देशी या निजी संरचना की बात की, जिसमें उसने नायक (The Hero), प्रेषक (The dispatcher), सहायक (The helper), खलनायक (The Vellain), दाता (The Donar), राजकुमारियाँ और उनके पिता और मिथ्या लगने को शामिल किया तथा प्रकार्यों में आख्यान के चार खण्ड करके उसके 31 प्रकार्यों को उनमें बाँटा। पहला खण्ड-परिचय, दूसरा खण्ड-कथा की रूपरेखा, तीसरा खण्ड-प्रदाता अनुक्रम तथा चौथा खण्ड-नायक की वापसी के रूप रखा। यह एक लोक आख्यान को पढ़ने का एक महत्वपूर्ण तरीका था।

लेवी स्ट्रास पर प्रोप के इस संरचनात्मक अध्ययन का गम्भीर असर हुआ। लेवी स्ट्रास ने The Elementary Structure of Kinship में संरचनात्मक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग किया तथा माइपोलाजिम्स में इन संरचनात्मक सिद्धान्तों के आधार पर मिथकों की संरचनाओं का अध्ययन किया। लेवी स्ट्रास ने मिथकों में द्विस्तरीय संरचना को देखने पर जोर दिया जिसमें मिथक के तत्व और खास कथा की अन्तर्वस्तु को द्विस्तरीय स्थिति में रखा। इसी प्रक्रिया में उसने My themes की अवधारणा रखी। लेवी स्ट्रास का कहना था कि व्यक्तित्वगत आख्यान संरचना वास्तविक अन्तर्विरोधों की काल्पनिक गाथा से जकड़ा हुआ होता है।

उम्बार्ट हूको ने वीर नायकों या महानायकों के स्वरूप का संरचनावादी अध्ययन किया। अक्सर लोक गाथायें इसी तरह के महानायकों की कथा के विभिन्न रूप होते हैं। इसलिये इको का यह अध्ययन महत्वपूर्ण था और इसने लोक गाथा के अध्ययन के लिये नये आयाम प्रस्तुत किये। इको का कहना था कि सुपरमैन और परम्परागत नायक में आधारभूत अन्तर है— "परम्परागत नायक दैवीय रूप से उद्भूत नायक है। उसके चरित्र के भीतर अधिभौतिक विशिष्टतायें हैं और अलौकिक भव्यता है। यह कथा का चरित्र के अभिलक्षणों के अनुसार धीरे-धीरे आगे बढ़ाता है।"³⁰ उम्बार्टो इको ने लोकगाथा के अध्ययन के क्षेत्र में नये उपन्यासों को सामने रखकर संरचनापरक अध्ययन के लिये कई महत्वपूर्ण अवधारणाओं को दिया

जिनमें बहुनिर्देशित व्यक्ति आख्यान की बहुलता, नागरिक और राजनीतिक चेतना की अवधारणा महत्वपूर्ण है।

लोकगाथा की संरचना के अध्ययन के विविध आयाम

‘एक्सल ऑर्गिक’ ने महाआख्यानों के संगठन के सिद्धान्तों पर विस्तृत विवेचन करते हुए पहली बार लोक साहित्य के क्षेत्र में संरचना के अध्ययन की नींव रखी। इसी को आगे बढ़ाते हुए ‘सर फ्रेजर’ ने ‘गोल्डन बाउ’ (Golden Bough) में अनुकरणात्मक जादुई संरचना के क्रिया-कलापों के निर्माण के विभिन्न तथ्यों का अध्ययन किया। ‘एन्टी आयनी’ ने लोक कथाओं के विभिन्न प्रकार के अध्ययन में उन तत्वों की खोज की जिनके आधार पर उन कथाओं को अलग-अलग किया जा सकता था। ‘प्रोप’ का ‘मॉर्फोलॉजी ऑव फोकटेल’ सबसे महत्वपूर्ण अध्ययन है। जिसमें उन्होंने 31 केन्द्रीय क्रियाओं को संरचना के विभिन्न प्रकारों के आधार पर अलग-अलग किया। संरचनावादी सिद्धान्त में यह बात निहित है। प्रत्येक संरचना विभिन्न प्रकार्यों के आधार पर जीवित रहती है। उत्तर संरचनावादी सिद्धान्त इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए बड़ी दिखने वाली संरचनाओं के भीतर बहुत सी संरचनाओं की परिकल्पना करते हैं और उन छोटी-छोटी संरचनाओं के अनेक कार्यो को उतना ही महत्व देते हैं। ‘ऐलेन ड्यूनस’ का कहना है कि ये संरचनात्मक तत्व समय के साथ विकसित होते हैं और बदलते रहते हैं।

लोककथा गीतों को कथागीत, गीतकथा या पंवाडा या ऐंचली कहा जाता है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने कथात्मक गीतों के लिये लोकगाथा शब्द प्रयुक्त किया है। गाथा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, आमकोश और विष्णुपुराण आदि में आया है। गाथा सप्तशती, दुर्गासप्तशती आदि नाम पहले भी प्रयुक्त होते रहे हैं। लोकगाथा शब्द अंग्रेजी के Ballads का समानार्थी है। कार ने इसकी परिभाषा इस तरह की है— “बैलेड वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोक काव्य से विकसित होता है या लोकगाथा के सामान्य रूप विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है, जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकता दोनों होती हैं। इसका प्रचार साधारण रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता है।”³¹

लोकगाथा में सामान्य रूप से निम्न गुण पाये जाते हैं। अज्ञात रचनाकार, अप्रमाणिक मूलपाठ, संगीत एवं नृत्यकार साहचर्य, स्थानीयता की गंध, मौखिक परम्परा, साधारण शैली, उपदेश वृत्त, रचनाकार के व्यक्तित्व का अभाव, दीर्घकथानक, इतिहास की संदिग्धता। सभी लोक गाथाओं में विशेषतायें सामान्यतया पायी जाती हैं। इनके आधार पर लोकगाथा की संरचना का पता लगाया जा सकता है।

डॉ० गिब्स और डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगाथा की परिभाषा में जो विशेषता दी है। वे इस प्रकार है—

1. यह वस्तु व्यंजक होती है, आत्मव्यंजक नहीं।
2. लोककण्ठ पर अवस्थिति और उत्पन्न होती है।
3. यथार्थ चित्रण का प्राधान्य, चेष्टापूर्वक लगायी जाने वाली कलात्मकता तथा वाक्जन्म या अनावश्यक सामग्री अनुपस्थित होती है।

4. भावात्मकता, परम्परित का सहज रूप कल्पनागत सरलता का आधिक्य।
5. नैसर्गिकता और भावों एवं विचारों की सरलता।
6. शिष्ट साहित्य द्वारा संजे संवारे अलंकारों का अभाव।
7. अलंकारों, कहावतों, मुहावरों की आवृत्ति।
8. सरल छन्द व तुकों की लापरवाही।
9. गेयता की विद्यमानता।
10. किसी लघु या दीर्घ कथा सूत्र की अभिव्यक्ति³²

डॉ० जगदीश व्योम का कहना है कि— “कितने व्यावहारिक उद्देश्य एवं भावनायें निहित हैं लोक गाथाओं में समाहित लोक संस्कृति में भारतीय संस्कृति के सभी प्रमुख तत्व समाहित हैं। अध्यात्मवादी दृष्टिकोण, बहुदेववाद, समन्वयवाद, सेवाभाव सम्मान का भाव, पवित्रता, अनेकता में एकता, विश्वास, सहनशीलता, नारी सम्मान, ईश्वर पर विश्वास, अतिथि सेवा, शरणागत की रक्षा, व्रत एवं नियम पालन, अहिंसावादी दृष्टिकोण आदि भावनायें लोक गाथाओं में उभरकर सामने आयी हैं। लोक गाथायें ही भारतीय संस्कृति को कालजयी बनाये हुए हैं। सांस्कृतिक चेतना का निर्मल स्वरूप लोक गाथाओं में ही देखने को मिलता है।”³³

किसी लोकगाथा में बनने वाले चरित्र, घटने वाली घटनायें, अनुपालन किये जाने वाले सामाजिक नियम, जिए जाने वाले सांस्कृतिक विश्वास, कथा के कहे जाने की विभिन्न शैलियाँ, उससे दिये जाने वाले सन्देश बहुत सी संरचनाओं का निर्माण करते हैं। ये तत्व एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हुए भी एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं और अपना विशेष महत्व रखते हैं। ‘सोलिस’ ने इन विभिन्न तत्वों के संगठनीकरण की प्रक्रिया को भी संरचना का हिस्सा माना।

लोक साहित्य के चरित्र, लिखित साहित्य के चरित्र से न केवल भिन्न होते हैं। बल्कि कथा कहे जाने की परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न रूप धारण करते रहते हैं। कथा कहने वाला अपनी मनः स्थिति और स्रोत समूह की प्रकृति के अनुरूप उसमें फेर-बदल करता रहता है। एक ही कथा का वीर नायक चरित्र एक समय में निहायत वीर पुरुष दिखता है दूसरे स्थान पर वही धार्मिक चेतना का प्रतीक बन जाता है। उत्तर-संरचनावादी पद्धति कथा के इस चरित्र के भीतर मिलने वाली इन विशेषताओं को स्वतंत्र रूप से परिस्थिति और पद्धति के अनुरूप मूल्यवान मानती है। इसी तरह से लोकगाथा की संरचना स्थिति अपने आप में स्थिर संरचना नहीं होती। यह कथा भी घटती-बढ़ती रहती है। किसी लोकगाथा के पाये जाने वाले अनेक रूपों से इस बात का पता चलता है कि मांग के अनुरूप कथा का प्रचलन होता है। कई बार किसी एक हिस्से को भी सुनाया जाता है। लोक कथाओं के सुनाये जाते समय कई बार तात्कालिक प्रसंग और दूसरी कथाओं के आनुषंगिक प्रसंग भी कथा में चले आते हैं। जिससे कथा का रूप छोटा-बड़ा होता रहता है। यह लोककथा के अध्ययन का महत्वपूर्ण रूप है। परन्तु इसकी अनिश्चितता लोक साहित्य के मूल स्वरूप की पहचान के लिए खास किस्म के शोध की माँग करती है।

“समबर्धित काव्य की ही भाँति लोक गाथाओं में लोक कवियों द्वारा समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्धन

होता रहता है। इस प्रकार इनके मूलपाठ में परिवर्धन का क्रम जारी रहता है। लोक गाथाओं का जितना ही अधिक प्रचार होता है, उनमें परिवर्तन की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। विभिन्न कालों में विभिन्न जनपदों के लोक-कवियों द्वारा उनके कलेवर में वृद्धि की जाती है। अनेक नवीन घटनाओं का समावेश उनमें किया जाता है। कहीं-कहीं पात्रों के नामों में भी भिन्ना कर दी जाती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया सैकड़ों वर्षों तक चलती रहती है। इस अवधि में मूल गाथा में भाषा सम्बन्धी तथा घटनाचक्र सम्बन्धी इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि मूल लेखक की अपनी कृति को पहचानने में असमर्थता का अनुभव करने लगता है।³⁴

उद्देश्य

जनसांख्यिकीय विभिन्नतायें, सामाजिक, सांस्कृतिक विभिन्नताओं का समर्थन करती है। ये सांस्कृतिक विभिन्नतायें इतिहास के लम्बे दौर में विकसित होती हैं। जनसंख्या की आवा-जाही विभिन्न सांस्कृतिक तथ्यों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानान्तरण करती है। जिससे बहुत से सांस्कृतिक तथ्य एक-दूसरे से मिल जाते हैं। किसी भी लोकगाथा के अध्ययन में इन सांस्कृतिक तथ्यों की ऐतिहासिक पहचान लोकगाथा के संरचनावादी अध्ययन से आवश्यक है।

निष्कर्ष

दुनिया की तमाम सामाजिक व्यवस्थायें अपने सामाजिक नियमों से संचालित होती हैं। लोक साहित्य के निर्माण में इन सामाजिक विभिन्नताओं का आवश्यक रूप दिखायी देता है। जब साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों के प्रतिबिम्ब के रूप में चिन्हित किया जाता है तब उसमें यह बात आवश्यक रूप से शामिल होती है कि समाज की विशिष्ट संरचना साहित्य के भीतर स्थान पायेगी ही। लोकसाहित्य में धर्मगत, जातिगत, लिंगगत, सामाजिक विकास में इसी तरह क्रियाशील प्रतिबिम्बित होती है। जैसी कि समाज में चल रही होती है। ये किसी भी लोक साहित्य की संरचना के आवश्यक तत्व हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जॉन सिम्पसन एण्ड एडमन्ड वेनर : द ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस-1933, वॉल्यूम-X, पृ.-1165।
2. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-26।
3. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-26।
4. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-27।
5. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-27।
6. सुधीश पचौरी : आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-183।

7. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-30-31।
8. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-29।
9. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-31।
10. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-32।
11. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-33।
12. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-34।
13. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-44।
14. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-34।
15. गोपीचन्द नारंग : संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ.-43।
16. सुधीश पचौरी : आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-180।
17. डॉ० अमरनाथ : हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, पृ.-119।
18. डॉ० अमरनाथ : हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, पृ.-119।
19. डॉ० श्यामाचरण दुबे : साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, (सं० बद्रीनारायण मिश्र) वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-19।
20. एलेन ड्यून्स : द मार्फोलॉजी ऑफ फोकलोर, ब्लादिमीर प्रोप, अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी पब्लिकेशन, पृ.-09-10।
21. लेवी स्ट्रोस : माइथोलॉजिकल सीरीज 1979, पृ.-17।
22. सुधीश पचौरी : आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-187।
23. सुबास कुमार : गाथा का यथार्थ, पृ.-36।
24. सुधीश पचौरी : आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-182।
25. रॉबर्ट ग्रेन्स : द इंग्लिश बेलेड्स ट्राडक्शन, पृ.-12।
26. कृष्णदेव उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद, पृ.-116।
27. हडसन : इन्ट्रोडक्शन स्टडीज ऑफ लिटरेचर, पृ.-39।
28. पं० राहुल सांकृत्यायन, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, भाग-16, हिन्दी

- लोक साहित्य नागरी प्रचारिणी सभा काशी,
सं०-2017, पृ.-89।
29. क्रीट्ज : इंगलिश एण्ड स्कोटिस पॉपुलर बेलेड्स
इन्ट्रोडक्शन, पृ.-18।
30. उम्बार्टो इको : मिथ ऑफ सुपरमैन – द रोल ऑफ
द रीडर, एक्सप्लोरेशन्स इन सिमिलियर ऑफ
टेक्स्ट, पृ.-108।
31. डब्ल्यू० पी० कार : (अनु० सन्तराम वत्स), अच्छे
बनो, पृ.-17।
32. डब्ल्यू० पी० कार : (अनु० सन्तराम वत्स), अच्छे
बनो, पृ.-17।
33. डॉ० जगदीश व्योम : लोक कथाओं में सांस्कृतिक
चेतना, 21 मई 2006, हिन्दी साहित्य लेख, ब्लॉग
स्पॉट. इन।
34. क्रीट्ज : इंगलिश एण्ड स्कोटिस पॉपुलर बेलेड्स
इन्ट्रोडक्शन, पृ.-17।